

की गणेशपुरी, कभी अरुणाचलम् जाते तो कभी दक्षिणेश्वर।

सन् 1971 में दिनकरजी भारत सरकार के हिंदी सलाहकार पद से मुक्त हो पटना आकर रहने लगे। बिहार के तत्कालीन राज्यपाल देवकांत बरुआ ने उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की तरह पटना विश्वविद्यालय के 'प्रोफेसर ऑफ पोएट्री' के पद पर नियुक्त करने का आश्वासन दिया, किंतु अंततः बात वहीं रह गई।

सन् 1971 में उन्हें हलका सा पक्षाघात हुआ। उन दिनों वे अत्यधिक उद्विग्न रहा करते थे। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद दिनकर अपनी दिनचर्या में बाधा नहीं आने देते थे। एक ओर इलाज चल रहा था, दूसरी ओर वे लिखने-पढ़ने को बैठ जाते। रोग कभी भी उनके कर्म में बाधक नहीं बना। कोई नवयुवक भी उतना कर्मठ और साधक नहीं हो सकता, जितने कि वे उस अवस्था में थे। एक दिन उन्होंने मद्रास और वहाँ से तिरुपति जाने हेतु प्रस्थान किया। उनकी नन्ही सी नातिन ने उनसे पूछा, “नानाजी, आप तिरुपति क्यों जा रहे हैं?” दिनकरजी ने सहज भाव से हँसते हुए कहा, “मौत माँगने जा रहा हूँ!” और वे तिरुपति से वापस न लौट सके।

दिनकरजी पूर्व योजना के अनुसार मद्रास से तिरुपति बालाजी का दर्शन करने गए। उस दिन उस देवस्थान में उन्होंने यात्रियों के सामने 'रश्मिरथी' के उस अंश का पाठ किया, जिसमें भगवान् कृष्ण के विराट् रूप का चित्रण है और उसी विराट् रूप में दिनकरजी उसी रात विलीन हो गए। 24 अप्रैल, 1974 की रात साढ़े ग्यारह बजे उन्हें दिल का दौरा पड़ा और एक घंटे के भीतर उनका निधन हो गया। 25 अप्रैल को अपराह्न एक बजे उनका शव विमान से दिल्ली होते हुए पटना लाया गया। संध्या 5.45 बजे शवयात्रा आरंभ हुई और पटना के बाँसघाट पर उनका अंतिम संस्कार संपन्न हुआ।



महाकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

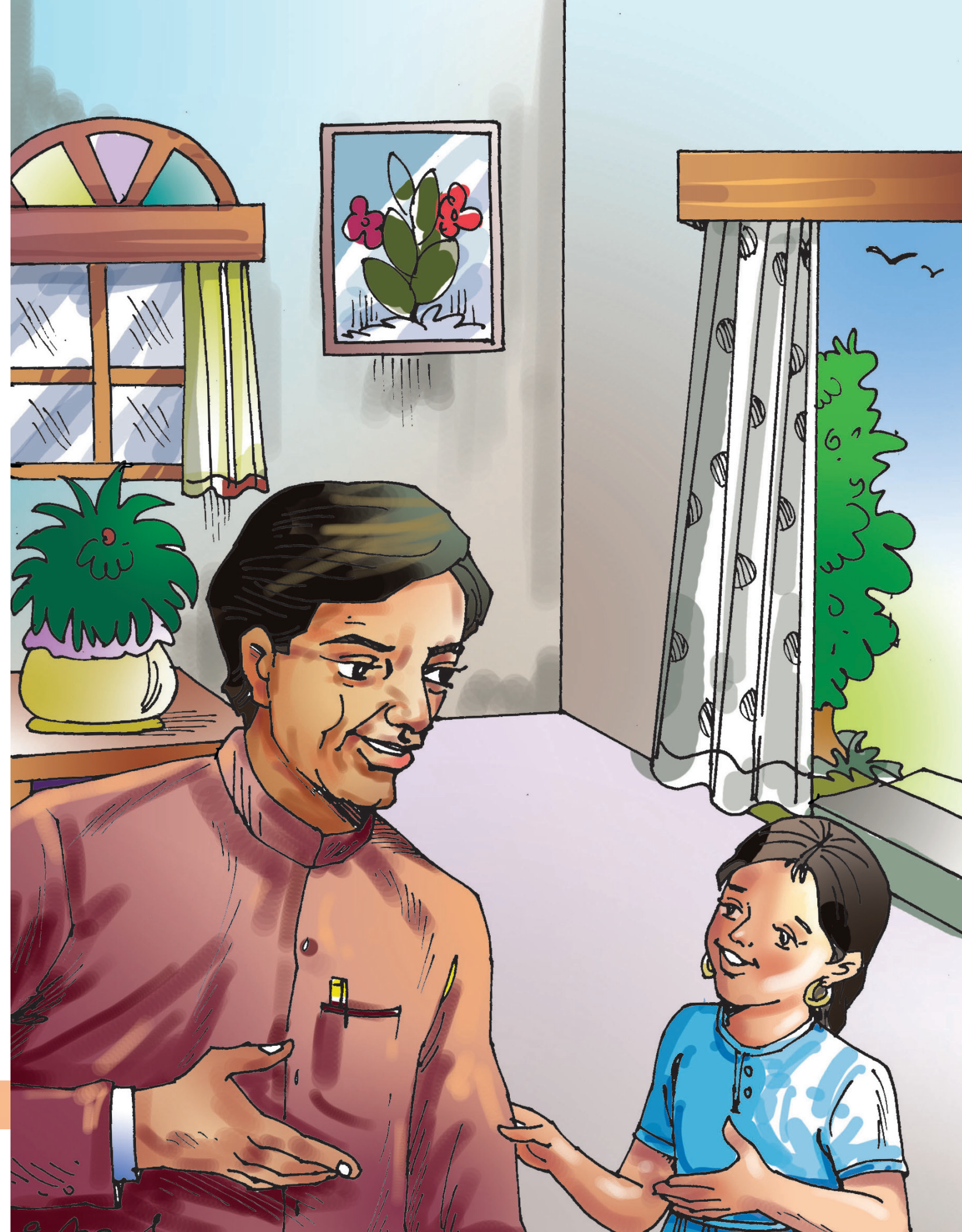
रामधारी सिंह 'दिनकर' हिंदी के श्रेष्ठ कवियों में से एक थे। उनकी ख्याति भारत तक सीमित न रहकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर थी। साहित्य-जगत् में उन्हें 'राष्ट्रकवि' के रूप में सम्मान प्राप्त हुआ। उनका मूल नाम रामधारी सिंह था; 'दिनकर' उपनाम के रूप में जुड़ा। दिनकर का जन्म 23 सितंबर, 1908 को बिहार प्रांत के मुंगेर जिला के सिमरिया गाँव, जो वर्तमान में बेगूसराय जिला के अंतर्गत है, में हुआ था। उनके पिता रवि सिंह थे, जिनकी पृष्ठभूमि एक निम्न मध्यवर्गीय किसान परिवार की थी। दिनकर का बचपन जिस वातावरण में बीता, वह साधारण किसानों और खेतिहर मजदूरों का था। तब समाज अशिक्षा तथा अंधविश्वास के दौर से गुजर रहा था। उनके गाँव में एकाध कायस्थ और दो-चार पुरोहित परिवारों को छोड़कर इक्के-दुक्के लोग ही शिक्षित थे। जब वे केवल दो वर्ष के थे, तभी उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। माताजी के संरक्षण में तीन भाइयों का बचपन व्यतीत हुआ, क्योंकि परिवार में कोई कमानेवाला नहीं था। अतः उन्हें अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जो थोड़ी-बहुत खेती थी, उसमें भी उनके परिवार को बाढ़ और गंगा के कटाव का सामना करना पड़ता था। दिनकर पाँच-छह साल के थे, तब तीन साल लगातार उनके परिवार को बाढ़ का सामना करना पड़ा। भयंकर अकाल का सामना करते-करते परिवार त्रस्त हो गया। उनके बड़े भाई बसंत सिंह ने असहयोग आंदोलन के दौरान पढ़ाई छोड़ दी और

खेती का काम सँभाल लिया। छोटे भाई सत्यनारायण सिंह भी पढ़ाई छोड़कर खेती में लग गए। दिनकरजी की पढ़ाई पर ही सब भाइयों के सपने केंद्रित थे।

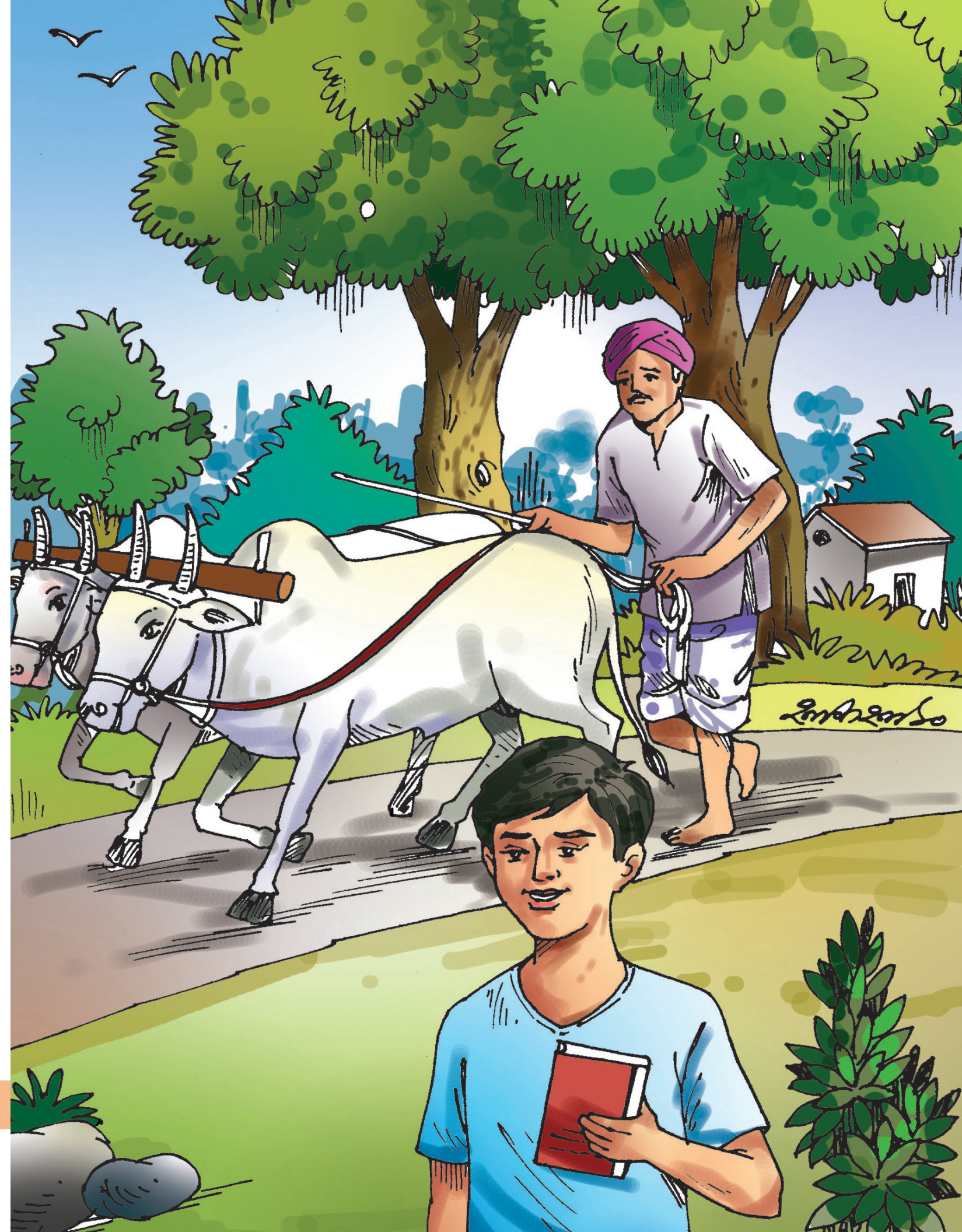
दिनकरजी का अक्षरारंभ गाँव की पाठशाला से ही हुआ। बाद में गाँव के अपर प्राइमरी स्कूल में अंक-बोध, खाता-लेखन, पहाड़ा तथा अर्जा के बाद के गणित की पढ़ाई की। स्कूल के शिक्षक तोता सिंह उन्हें बहुत मानते थे, इसीलिए उनकी कृपा से इन्हें गणित में महारत हासिल हो गई। जिस समय उनका जन्म हुआ था, उस समय गाँव में लालटेन जलाने का रिवाज नहीं था। रेंडी और सरसों के तेल से जलनेवाले दीपक की लौ में बहुत दिनों तक दिनकरजी को आँख गड़ाकर पढ़ना पड़ा था। गाँव में लालटेन जलाने की शुरुआत सर्वप्रथम उन्हीं के घर से हुई। मुँह अँधेरे ही दिनकरजी स्कूल को निकल पड़ते तथा शाम ढलते ही लौट आते थे। बचपन में उन्होंने गाय-भैंस की चरवाही भी की। चरवाहों की संगति में बचपन में उन्हें तंबाकू खाने की लत लग गई। किशोरावस्था में वे नियमित रूप से व्यायाम, कुश्ती और दंड-बैठक करते थे, जिससे उनकी देह हृष्ट-पुष्ट बन गई थी।

पाँचवीं कक्षा पास करने के बाद सन् 1922 में बारो गाँव के नेशनल मिडिल स्कूल में, बाद में जो सरकारी मिडिल स्कूल में हुआ। मिडिल की परीक्षा उन्होंने हिंदी में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके उत्तीर्ण की। पुरस्कार में उन्हें 'रामचरितमानस' और 'सूरसागर' जैसे ग्रंथ मिले। स्कूली जीवन में उनके पैर में जूते-चप्पल नहीं रहते थे। बाल भी व्यवस्थित एवं नियमित रूप से नहीं कटाए जाते थे। मिला-जुलाकर बिल्कुल निपट देहाती जैसा रूप-रंग। लिखने को सरकंडे की कलम और अपने से बनाई घोरहा रोशनाई। तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में ही सन् 1921 में रक्षा ठाकुर की पुत्री श्यामवती देवी के साथ विवाह हो गया। ससुराल दरभंगा जिला के काँटभका गाँव में थी, जो अब समस्तीपुर जिले में है।

जनवरी 1924 में मोकामा घाट के जेम्स पाकर हाई स्कूल में आठवें वर्ग में नाम



सन् 1959 में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ. जाकिर हुसैन द्वारा 'डॉक्टर ऑफ लिटरेचर' की उपाधि से विभूषित किया गया। संयोगवश जनवरी 1964 में वे भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए। बहुत ही उत्साह एवं मनोयोग से विश्वविद्यालय के निर्माण एवं विकास कार्य में जुट गए, परंतु राजनीति से प्रेरित विश्वविद्यालय के सिंडिकेट के कई सदस्य उनसे खुश नहीं थे। आखिर ऊबकर मई 1965 में उन्होंने कुलपति के पद से इस्तीफा दे दिया और भारत सरकार के हिंदी सलाहकार के पद पर चले गए। अपने जीवन में उन्हें अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करना पड़ा। उनके बड़े पुत्र रामसेवक सिंह मुजफ्फरपुर के रामदयालु सिंह कॉलेज में हिंदी के अध्यापक पद पर कार्यरत थे। दिनकर ने जब 'उदयाचल' नाम से अपना प्रकाशन शुरू किया तो रामसेवक सिंह प्रकाशन के व्यवसाय से घनिष्ठ रूप से जुड़ गए। इसके लिए उन्होंने महाविद्यालय की अध्यापकी से त्यागपत्र दे दिया। सारी पुस्तकें कलकत्ता के जनवाणी प्रेस से छपती थीं। दिनकर सरकारी सेवा के साथ-साथ लेखन और साहित्यिक गतिविधियों में व्यस्त रहने लगे। प्रकाशन का सारा काम-काज रामसेवक सिंह ही देखने लगे। पुस्तकों का कार्य भी संतोषजनक रूप से चल निकला था। अन्य परिवारी जनों की महत्वाकांक्षाएँ भी बढ़ने लगीं, परंतु 12 अप्रैल, 1967 को रामसेवक सिंह का असामयिक निधन हो गया। विधवा पुत्रवधू और पाँच अनाथ पोते-पोतियों की जिम्मेदारी उनके ऊपर आ गई। इस प्रकार जवानी भाइयों की सेवा में और बुढ़ापा अनाथ पोते व पोतियों को खड़ा करने में बीता। बेटा-बेटी, पौत्र-पौत्री, पत्नी, पतोह, नाती-नातिन जैसे परिवार के विशाल संख्या के बावजूद दिनकर नितांत अकेलापन महसूस कर रहे थे। बाह्य रूप से सुसज्जित पोशाक और वस्त्रों को धारण करते हुए भी दिनकर का मन संन्यासी हो चुका था। वे मानसिक शांति के लिए कभी अरविंद आश्रम जाते तो कभी मुक्तानंदजी



लिखाया गया। उनके गाँव सिमरिया और मोकामा के बीच गंगा नदी बहती थी। स्कूल जाने के लिए नाव से गंगा पार करनी पड़ती थी। धोती-कुरता पहने वे प्रतिदिन नंगे पाँव पैदल मोकामा घाट स्कूल जाते थे। गरमी के दिनों में दियार के तपते बालू पर बिना जूता-चप्पल के चलना कितना कष्टदायक था, इसका अनुमान किया जा सकता है। बालू की जलन से बचने के लिए वे पैरों में कपड़े की पोटली बाँध लेते। यदा-कदा पैसेंजर या माल जहाज से भी गंगा पार करना पड़ता था। सन् 1928 में 19-20 वर्ष की अवस्था में दिनकरजी ने मैट्रिक की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में हिंदी में उन्हें सर्वाधिक अंक प्राप्त हुआ, जिस उपलक्ष्य में उन्हें 'भूदेव पदक' से सम्मानित किया गया था। सन् 1928 में पटना कॉलेज में नाम लिखाया गया। ऐच्छिक विषय के रूप में वे हिंदी पढ़ना चाहते थे, किंतु प्रिंसिपल हॉर्न ने इसकी स्वीकृति नहीं दी, अंततः सन् 1932 में इतिहास विषय से बी.ए. ऑनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की।

बी.ए. पास करने के बाद दिनकरजी बिहार सरकार के मंत्री सर गणेश दत्त सिंह के पास नौकरी के लिए गए। सर गणेश दत्त ने उनमें कोई रुचि नहीं दिखाई। उन्होंने रूखा सा जवाब दिया, “कहीं जाकर मास्टरी करो।” काफी भटकने के बाद बरबीघा स्थित एक नए उच्च विद्यालय में प्रधानाध्यापक की नौकरी मिली। परंतु यह नौकरी जनवरी 1933 से अगस्त 1934 तक ही चली। सितंबर 1934 में बिहार सरकार के राजस्व विभाग में उनकी नियुक्ति सब-रजिस्ट्रार के पद पर हुई। पहली नियुक्ति सासाराम में हुई और एक माह के बाद ही तबादला जयनगर को गया। सब-रजिस्ट्रार के पद पर वे 1942 तक रहे। 1943 से 1945 तक शुद्ध प्रचार विभाग से संबद्ध रहे तथा बिहार सरकार के जनसंपर्क विभाग में डिप्टी डायरेक्टर के रूप में 1947 से 1950 तक अपनी महत्वपूर्ण सेवाएँ दीं।

दिनकरजी को महात्मा गांधी का प्रथम दर्शन सन् 1920 में हुआ था। किशोरावस्था आते-आते महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वाधीनता आंदोलन का श्रीगणेश हो चुका था।



लिये गए और बिहार शिक्षा सेवा से त्यागपत्र देकर दिल्ली चले गए। दिल्ली में रहकर उन्होंने 1954 में 'भारत का यह रेशमी नगर' नामक कविता लिखी, जिसमें दिल्ली का चकाचौंध भरा विलासितापूर्ण जीवन और गाँव की बदहाली का मार्मिक विश्लेषण किया। दिल्ली प्रवास उनकी रचनात्मकता का बहुत महत्वपूर्ण काल रहा। 'संस्कृति के चार अध्याय' जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना वहीं पर हुई। 6 नवंबर, 1956 को इस ग्रंथ पर उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद की 'कामायनी' तथा सुमित्रानंदन पंत पर बहुत ही समर्थ समीक्षाएँ लिखीं। 'कोयला और कवित्व', 'हारे को हरिनाम' जैसे काव्य-संकलनों के साथ विदेशी कविताओं का अनुवाद 'सीपी और शंख' नामक संकलन दिल्ली प्रवास की ही देन है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार कवि डी.एच. लॉरेंस की कविताओं का अनुवाद 'आत्मा की आँखें' का प्रकाशन भी इसी अवधि में हुआ।

सन् 1961 में 'उर्वशी' का प्रकाशन हुआ। साहित्य जगत् में इस काव्य रचना का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। 'कामायनी' और 'अंधा युग' के बाद 'उर्वशी' ने एक बड़े सहृदय समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफलता हासिल की। इसकी जितनी प्रशंसा हुई, उतनी आलोचना भी। 'उर्वशी' बीसवीं सदी की कालजयी रचना प्रमाणित हुई। दिनकर को कई प्रसंगों में विदेश यात्रा का भी सुयोग प्राप्त हुआ। 1955 में पोलैंड के राष्ट्रकवि अदम मित्सूकेविच के स्वर्गारोहण शताब्दी समारोह के अवसर पर वे भारत सरकार की ओर से पोलैंड गए और उसी क्रम में उन्होंने इंग्लैंड, स्विट्जरलैंड तथा मिस्र की भी यात्रा की। 1957 में उन्होंने चीनी लेखक संघ के निमंत्रण पर चीन का भ्रमण किया। 1961 में दिनकर भारत के एक सांस्कृतिक शिष्टमंडल के साथ रूस गए। 1967 में मॉरीशस, 1968 में पश्चिम जर्मनी और 1971 में पुनः इंग्लैंड गए। यह उनके जीवन की अंतिम विदेश यात्रा रही।



1928 में जब मैट्रिक पास कर पटना कॉलेज में इंटरमीडिएट में दाखिला लिया, उस समय आंदोलन उग्र रूप ले चुका था। साइमन कमीशन के खिलाफ पूरे देश में प्रदर्शन हो रहे थे। पटना में भी प्रदर्शन हुए। दिनकर ने भी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किए। पटना के गांधी मैदान में आयोजित हजारों लोगों की रैली में दिनकर शामिल थे। साइमन कमीशन के विरोध में पंजाब के शेर लाला लाजपत राय पर अंग्रेज सिपाहियों द्वारा लाठीचार्ज और बाद में उनकी मृत्यु से सारा देश उबल पड़ा। दिनकर का संवेदनशील युवा मन भी उद्वेलित व उग्र हो गया। उनका भावुक मन कवित्व की ऊर्जा से लबालब होने लगा।

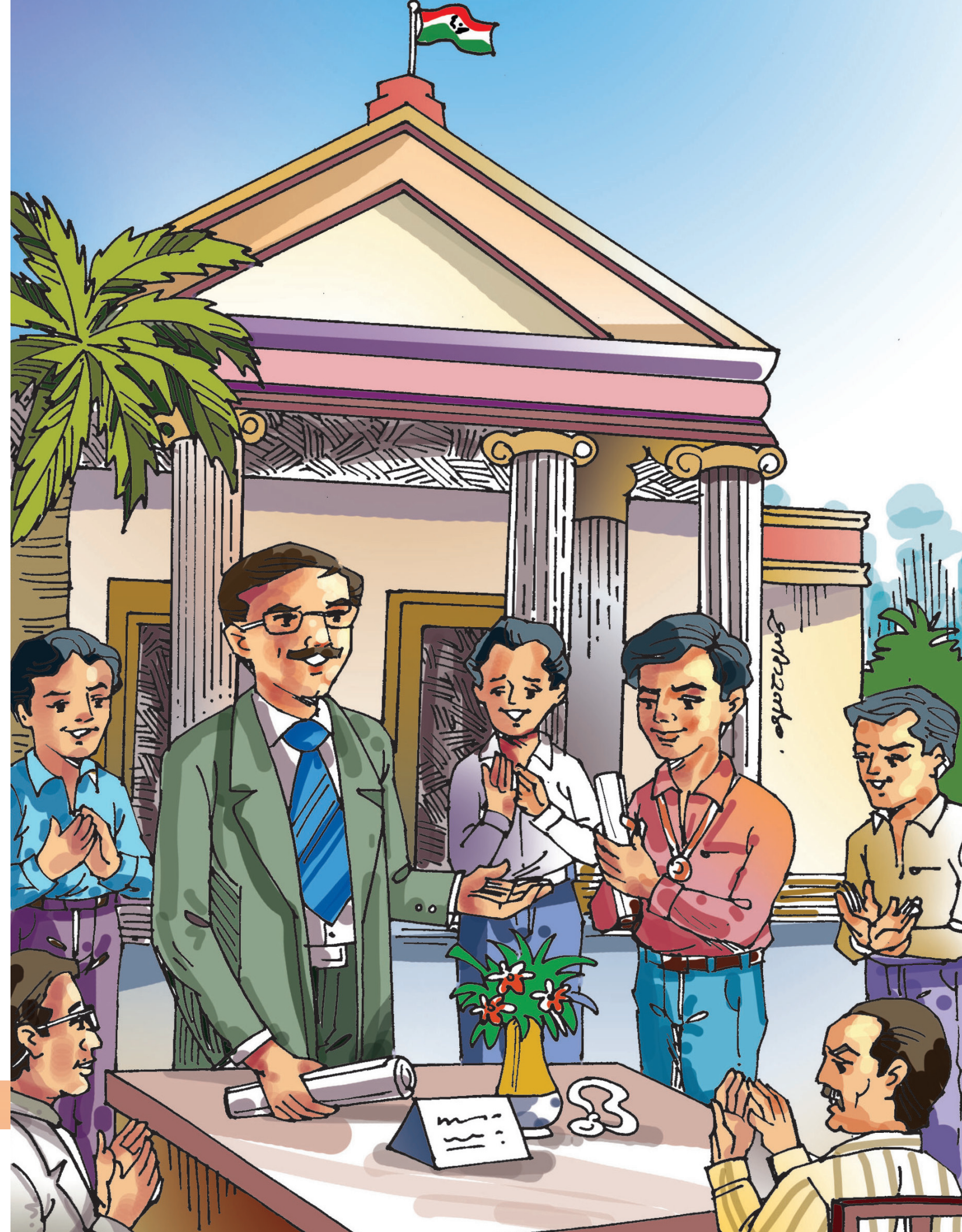
दिनकर की पहली कविता सन् 1924-25 में जबलपुर के 'छात्र-सहोदर' पत्र में छपी थी, जिसके संपादक श्री नरसिंह दास थे। 1928 में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में हुए 'किसान सत्याग्रह' से संबंधित विषय पर दिनकरजी ने दस गीत लिखे, जो 'विजय-संदेश' नाम से पुस्तिका में छपे। सरकार के कोप से बचने के लिए पटना से प्रकाशित 'युवक' पत्रिका में अमिताभ नाम से कविताएँ लिखीं। सन् 1928 में 'जतीनदास की शहादत' पर उनकी कविता प्रकाशित हुई। इसी के आस-पास 'वीरबाला' तथा 'मेघनाद वध' नामक दो छोटे काव्य लिखे।

सन् 1930 में उन्होंने 'प्रणभंग' नामक काव्य की रचना की। 1930 तक दिनकर कविता के क्षेत्र में अपनी दिशा तलाश रहे थे। उस समय छायावादी कवियों में कवि सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद तथा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की काव्य रचनाओं ने उन्हें प्रभावित किया। छायावाद से मोहित होकर उन्होंने राह तलाशने के क्रम में कुछेक छायावादी ढंग की कविताएँ भी लिखीं। 'रेणुका' काव्य-संग्रह में संकलित 'निर्झरिणी', 'फूल', 'कोयल' और 'परदेशी' आदि कविताओं में स्पष्टतः छायावाद का प्रभाव दिखाई देता है। इसी काल में उन्होंने 'मिथिला में शरत्' शीर्षक से अपनी जन्मभूमि सिमरिया घाट पर भी कविता लिखी। सन् 1930 के बाद की कविताओं में



छह दिनों की छुट्टियाँ मिल जाती थीं, जिन्हें मैं जायसवालजी के सान्निध्य में बिताने पटना चला जाता था, और तीसरे यह कि जयप्रकाशजी बराबर शह देते रहते थे कि इस्तीफा देने की अपेक्षा बरतारफ हो जाना ही श्रेष्ठ है।” दिनकर की छवि अंग्रेज सरकारपरस्त व्यक्ति की बनती जा रही थी। यह विचित्र संयोग था कि अंग्रेजी राज के विरोध में सबसे उग्र राष्ट्रीय कविताएँ लिखने वाला जनता का लाडला कवि युद्धकाल में उन्हीं अंग्रेजों की चाकरी कर रहा था। सितंबर 1943 से 1945 तक सरकार ने उन्हें ऐसी जगह पद-स्थापित कर दिया, जहाँ राष्ट्र-विरोधी कार्यों की योजनाएँ बनती थीं। उस मानसिक उत्पीड़न की स्थिति में दिनकर कार्यालय जाना छोड़कर अपने निवास पर ही फाइल निबटा देते थे अथवा स्वाधीन रूप से कार्य करने के लिए लंबी छुट्टी पर चले जाते। अगस्त 1945 में वे ‘योगी’ पत्रिका से पूरी तरह जुड़ गए। ‘हिमालय’ पत्रिका के संपादन में भी सहयोग देने लगे। आगे चलकर दिनकर ने सरकार के प्रचार विभाग से त्याग-पत्र दे दिया। उसी समय अक्टूबर 1946 में नोआखाली में भीषण दंगा हुआ। इस सांप्रदायिक विद्वेष से व्यथित होकर उन्होंने ‘तकदीर का बँटवारा’ नामक कविता लिखी। कवि दिनकर स्वयं अकेली किरण बन अंधकार की फौज से लड़े, परिणामतः सन् 1947 के 15 अगस्त को देश आजाद तो हुआ, किंतु सांप्रदायिक आधार पर देश का विभाजन हो गया।

सन् 1946 में दिनकर की सबसे महत्वपूर्ण रचना ‘कुरुक्षेत्र’ प्रकाशित हुई। ‘कुरुक्षेत्र’ के प्रकाशन के साथ ही वे उत्तर छायावाद काल के सबसे बड़े कवि के रूप में स्थापित हो गए। कुरुक्षेत्र पर सन् 1948 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तर प्रदेश सरकार तथा भारत सरकार द्वारा दिनकरजी पुरस्कृत किए गए। दिनकर सरकारी सेवा से मुक्त होकर लगभग डेढ़ साल तक पत्रकारिता करते रहे। सन् 1950 में बिहार सरकार ने उन्हें लंगर सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर में हिंदी का विभागाध्यक्ष बनाकर भेजा। वे इस पद पर दो साल ही रहे कि सन् 1952 के अप्रैल महीने में राज्यसभा के लिए चुन



उनके मौलिक बोध के तत्त्व दीखने लगे। 1933 में उन्होंने 'नई दिल्ली' और 'हिमालय' शीर्षक की कविता लिखी। 1934 में बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के छपरा अधिवेशन में कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता दिनकर ने ही की। यह अध्यक्षता उनके लिए मुसीबत का कारण बन गई। कवि-सम्मेलन के बाद सरकार ने उनसे कैफियत तलब की। सन् 1935 में कलकत्ता में एक विशाल कवि-सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रसिद्ध जापानी राष्ट्रकवि यान-नाग-चू (नागूची) को सम्मानित किया गया था। इस कवि सम्मेलन में राष्ट्रीय स्तर के कवि-कवयित्री महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, मनोरंजन प्रसाद सिंह, बिस्मिल इलाहाबादी के साथ रामधारी सिंह 'दिनकर' भी आमंत्रित थे।

दिनकर का पहला कविता संकलन 'रेणुका' वर्ष 1935 में प्रकाशित हुआ। 'रेणुका' के प्रकाशन से जहाँ उनका साहित्यिक व्यक्तित्व स्थापित हुआ, वहीं दूसरी ओर सरकार की नजरों में वे चढ़ने लगे। कारण, रेणुका की कविताएँ देशभक्ति से ओत-प्रोत थीं, जो परोक्ष रूप से सरकार को चुनौती देती प्रतीत होती थीं। सरकार की ओर से उनके पीछे जासूस लगा दिए गए। तरह-तरह के कैफियत तलब किए जाने लगे और चेतावनियाँ दी जाने लगीं। प्रसिद्ध बैरिस्टर और इतिहासकार डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल दिनकरजी से पुत्रवत् स्नेह रखते थे। सन् 1935 से 1940 तक दिनकर की चार पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें 'हुंकार', 'रसवंती', 'द्वंद्वगीत' प्रमुख थीं। 1941 में उन्होंने गांधीवाद से प्रभावित होकर 'कलिंग-विजय' नामक कविता लिखी तो सरकार के इस कदर कोप-भाजन बने कि चार साल में उनके बाईस तबादले किए गए। सरकार ने उन्हें नौकरी से तो नहीं निकाला, किंतु उन्हें काफी परेशान किया गया। उन दिनों को याद करते हुए दिनकर ने लिखा है—“घबराहट में आकर कई बार मैंने सोचा कि अब नौकरी छोड़ दूँ। किंतु तीन बातें थीं, जिनके कारण नौकरी न छोड़ सका। पहली तो यह कि नौकरी यदि छूट गई तो परिवार खाएगा क्या? दूसरी यह कि हर तबादले के साथ मुझे चार-

